Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

समकालीन सभ्यता और नारी का महत्व

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

समकालीन सभ्यता और नारी का महत्व

Seema Narwal

Assistant Professor in Hindi, Gaur College of Education, Hisar

----------♦----------

'' काव्येषु नाटकंम् रम्यम् '' कह कर संस्कृताचार्यों ने और '' नाटक जीवन की अनुकृति है'' (ड्रामा ईज इमिटषन ऑफ लाइफ) कहकर आंग्स समीक्षकों ने इस दृष्यात्मक साहित्यक विधा और जीवन के संबंध की घनिष्ठता को दृढ़ता के साथ निरूपित किया है। इस विधा की एक विषेषता यह है कि जीवन के विविध संदर्भों से जुड़े हुए पात्र अपने व्यक्तित्व को अपनी ही शैली में उद्घाटित करते हैं, पात्रों के व्यक्तित्व–निर्माण में रचयिता को हस्तक्षेप करने के अधिकाधिक अवसर नहीं मिलते हैं। विवेच्य विषय के विष्लेषणार्थ आधुनिक नाट्य साहित्य को उसकी संपूर्णता में स्थानाभाव के कारण ग्रहण करना अत्यंत कठिन होने के कारण इस अनुखण्ड में उल्लेखनीय प्रतिनिधि रचनाओं पर ही प्रकाष डाला जा रहा है। क्योंकि नाटक साहित्य में नारी का अंतर्द्वन्द्व अलग से एक संपूर्ण शोध का विषय हो सकता है।

द्विवेदी युग को नाट्य विधा के लिए ह्रासात्मक युग ही माना जाता है क्यांकि इस युग में उच्चकोटि के साहित्यक नाटकों का प्रणयन बहुत कम ही हुआ। इसका मुख्य कारण जनता का रूझान मनोरंजन प्रधान पारसी नाट्य मंडलियों की ओर रहा। इने–गिने नाटक जो भी लिखे गए।

उनमें उपदेषात्मकता के बोझ के नीचे विषुद्ध एवं यथार्थवरक चरित्र का अंष दब–सा गया। पारसी नाट्य मंच पर नारी का जो चरित्र उभर कर आया, उसमें अयथार्थ और चौंकाने वाले तत्वों का प्राधान्य रहा इसलिए इस युग में भी नाटककारों की लेखनी नारी के अंतस के उथल–पुथल को रूपायित करने में अक्षम ही रही।

नाटक साहित्य के इतिहास में प्रसाद युग को पूर्णोत्कर्ष काल की संज्ञा दी जा सकती है, जिन्होंने महाभारत के उत्तरार्ध के कालखण्ड से लेकर बारहवीं सदी तक के गरिमामय भारतीय इतिहास और सांस्कृतिक उत्थान–पतन को अपने नाट्य साहित्य का वस्तु–पक्ष बनाया। राष्ट्रीय–स्वाधीनता, प्रेम, आत्मोत्सर्ग, बाह्य एवं अंतर्द्वन्द्व, नियतिवाद, प्रकृति के वैविध्यपूर्ण रूप ये सब प्रसाद के अत्यंत प्रिय विषय हैं, जो उनके नाट्य साहित्य को सुगुढ़ आधार प्रस्तुत करते हैं। प्रसाद ने अपने नाटकों में परिवेष के अनुरूप समस्त संभवनीय नारी चरित्रों का निर्माण बड़ी सजीवता के साथ किया है, जहाँ उनके नाटकों में हमें मालविका जैसी कुसुम कोमल कमनीय नारी लक्षित होती है।

वहीं क्रूरता और विद्रुपता की प्रतिमूर्ति छलना भी। प्रसाद के नाटकों में पुरूष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों को प्राप्त महत्व को देखते हुए ऐसा कहा जाता है कि प्रसाद जी के पुरूष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्र अधिक सफल और सज्जन तथा सजीव है। नाटक के सूत्र उनके द्वारा ही यथार्थ नाटकत्व ग्रहण करते हैं वे पुरूष पात्रों को मन चाहा नाच–नचाती है। प्रसाद जी के नाटक स्त्रीत्व प्रधान हैं।'' '' चन्द्रगुप्त '' को छोड़ कर शेष के लिए यह कथन ठीक है। जो तेज '' अजातषत्रु '' की छलना में और मल्लिका में है।

'' राज्य श्री '' की राज्य श्री में है, '' स्कन्दगुप्त '' की अनन्तदेवी, देवसेना और विजया में है, वह पुरूषों में नहीं मिलता। पुरूष हारे–हारे से और व्यग्र से लगते हैं। कुछ नाटकों का तो मूल–संघर्ष स्त्री–प्रतिस्पर्धा में ही है।''[1] स्पष्ट है कि प्रसाद ने नारी के आदर्षपूर्ण रूप चित्रण को ही उनके चरित्र निर्माण का आधार नहीं बनाया, प्रत्युत उनके जीवन में भी बड़ी–बड़ी समस्याओं और संघर्ष की स्थितियों को उत्पन्न कर उनके संयम और शक्ति का भी जीवंत परिचय दिया है। प्रसाद के नारी पात्रों में विद्यमान इस संघर्षी चेतना के बार में डॉ. प्रेमलता अग्रवाल का कथन है प्रसाद जी के नायिकाओं में संकल्प शक्ति उच्चतम विकसित रूप में विद्यमान है। उनकी नायिकायें अत्यधिक भावुक एवं कल्पनाशील है। उनमें तीव्र जिज्ञासा एवं रहस्य विद्यमान है। वे जटिल एवं गम्भीर हैं।

उनमें बाह्य एवं आंतरिक अंतर्द्वन्द्व विद्यमान है जिससे जूझती हुई वे अपना स्वतंत्र मार्ग चयन करती है।''[1] कहना न होगा कि प्रसाद ने अंतर्द्वन्द्व को अपने नाटकों के नारी पात्रों के व्यक्तित्व का एक अनिवार्य अंग सा बना दिया। उनके नारी पात्रों में विवेच्य विषय मन और मस्तिष्क का द्वन्द्व प्रकारान्तर से प्रेम और कर्तव्य के द्वन्द्व के रूप में ही चित्रित हुआ है। यहाँ उनके नाटकों में द्वन्द्वग्रस्त नारी पात्रों की कतिपय उक्तियाँ प्रस्तुत की जा रहीं हैं, जो उनके आंतरिक संघर्ष को घोतित करती हैं।

प्रसाद प्रणीत नाटक '' अजातषत्रु '' की संपूर्ण कथा आंतरिक और बाह्य संघर्ष से ही परिचालित है। डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का कथन है पूरा नाटक विरोधमूलक है। विरोध से ही प्रारम्भ होता है। विरोध का ही विस्तार किया गया है और अंत में भी विरोध की समाप्ति या शमन है। अंतर्द्वन्द्व और बहिर्द्वन्द्व से सारा नाटक भरा है।''[2]

जब विम्बसार और वासवी अपने ही अंतःपुर में बन्दी बना दिए जाते हैं, तब वासवी अंतर्द्वन्द्व से त्रस्त होती है। एक ओर अपने पिता की ओर से प्राप्त राज्य संपत्ति के प्रति तीव्र आकर्षण और उसे पति की सेवा में समर्पित न कर सकने की विवषता, इन स्थितियों के मध्य झूलती वासवी बिंबसार से कहती है '' काषी का राज्य मुझे मेरे पिता ने आँचल में दिया है। उसकी आय आपके हाथ में आनी चाहिए और मगध साम्राज्य की एक कौड़ी आप न छुएँ।''[1]

नाटक '' स्कन्दगुप्त '' की देवसेना के चरित्र में भी अंतर्द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण हुआ है। भावुक सरल हृदया देवसेना, स्कन्दगुप्त के प्रति पूर्णतः समर्पित है, लेकिन जब देवसेना का भाई बन्धु वर्मा राष्ट्रहित की दृष्टि से स्कन्दगुप्त की अपना राज्य दे देता

है, तब देवसेना स्कन्दगुप्त से विवाह सूत्र में बंधने से इनकार कर देती है, क्योंकि वह यह समझती है कि लोक में प्रचलित होगा कि उसका यह विवाह विषुद्ध प्रेम का परिणाम नहीं, अपितु राज्यदान की प्रतिक्रिया है। इस स्थिति में देवसेना का अंतर्द्वन्द्व अत्यंत सहज है। वह अपने प्रेमी की प्रतिष्ठा पर भी आँच नहीं आने देती है। उसका कथन है '' आपको अकर्मण्य बनाने के लिए देवसेना जीवित न रहेगी। सम्राट क्षमा दो। इस हृदय में . . . . आह। कहना ही पड़ा। स्कन्द को छोड़कर न तो कोई दूसरा आया और न वह जायेगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम होकर मुझे उसी की उपासना करने दीजिए। उसे कामना के भँवर में फँसाकर कतुर्षित न कीजिए। नाथ मैं आपकी ही हूँ ? मैंने अपने को दे दिया है, अब उसके बदले में कुछ नहीं चाहती।''[1]

प्रसाद के एक अन्य नाटक '' चन्द्रगुप्त '' की नारी पात्रियों में मालविका और कल्याणी ऐसी नारियाँ हैं, जिनके जीवन में उनका प्रेम सफल नहीं हो पाया। मालविका में कर्तव्य और कल्याणी में पर्वतेष्वर के प्रति उसका प्रतिषोध इन दोनों पात्रों का अंतर्द्वन्द्व के भंवर में डाल देता है।

मगध सम्राट नन्द की पुत्री कल्याणी, चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है, परन्तु नृझंस नन्द के शासन में राजकीय परिदृष्य कुछ ऐसा बदल जाता है कि चन्द्रगुप्त नन्द का विरोधी हो जाता है। कल्याणी अपने प्रेम–पथ में सालनेवाल इन राजकीय कंटकों के दुःख को मौन सहती रह जाती है। पर्वतेष्वर द्वारा उसे शुद्ध कन्या कहे जाने पर वह आवेष में उससे प्रतिषोध लेने का प्रण भी करती है, परन्तु उसमें भी वह विफल होती है।

मगध पतन के उपरांत अपने ही अंतःपुर में बन्दिनी कल्याणी अपने अंतर्द्वन्द्व को इस प्रकार स्वर देती है मेरे जीवन के दो स्वप्न थे। दुर्दिन के बाद आकाष के नक्षत्र विलास–सी चन्द्रगुप्त की छवि, और पर्वतेष्वर से प्रतिषोध, किन्तु मगध की राजकुमारी आज अपने ही उपवन में बन्दिनी है। मैं वही तो हूँ– जिसके संकेत पर मगध का साम्राज्य चल सकता था। वही शरीर है, वही रूप है, वही हृदय है, पर छिन गया, अधिकार और मनुष्य का मानदण्ड ऐष्वर्य। अब तुलना में सबसे छोटी हूँ। जीवन लज्जा की रंगभूमि बन रहा है। (सिर झुका लेती है) तो जब नन्द वंष का कोई न रहा, तब एक राजकुमारी बचकर क्या करेगी ?''[1]

सारी के पुनर्विवाह को सुदृढ़ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रामाणिक सिद्ध करते हुए, इस संदर्भ में नारी के आंतरिक संघर्ष और उसके विद्रोही चेतना को प्रसाद ने अपने नाटक ''ध्रुवस्वामिनी '' में बड़ा ही जीवंत–रूप प्रदान किया है। ध्रुवस्वामिनी का विवाह उसकी इच्छा के विरूद्ध रामगुप्त से कर दिया जाता है जबकि वह चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है। इस अनिच्छित विवाह के कारण वह सदा कुंठित ही रहती है, साथ–ही–साथ रामगुप्त उसके प्रति बड़ा दुर्व्यवहार भी करता है। वह ध्रुवस्वामिनी को अपने शत्रु शंकराज को भेंट स्वरूप दे देना चाहता है, लेकिन ध्रुवस्वामिनी की तर्कबुद्धि इसका तीव्र विरोध करती है। ध्रुवस्वामिनी कहती है '' पुरूषों ने स्त्रियों को अपनी पशु–संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का जो अभ्यास बना दिया है वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो।''[2]

अपने विरोध को क्रियान्वित न कर सकने की स्थिति में संघर्ष ले जूझती ध्रुवस्वामिनी जीवन से समझौता कर लेने के प्रयास में रामगुप्त से कहती है '' मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। राजा, आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ। मैं स्वीकार करती हूँ कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई, किन्तु वह मेरा अहंकार चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूँगी। राज्य और संपत्ति रहने पर राजा को–पुरूष को बहुत–सी रानियाँ और स्त्रियाँ मिलती हैं, किन्तु व्यक्ति का मान नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।''[1]

इस प्रकार नारी चित्रण के प्रसंग में समस्त संभावनाओं को साकार करते हुए प्रसाद ने अंतर्द्वन्द्व को भी व्यक्ति–चरित्र का एक अनिवार्य तत्व माना है। उनके नाटकों में नारी पात्रों के अंतर्द्वन्द्व की प्रतिक्रियाएँ संदर्भ के अनुरूप ही परिणत हुई है, यथा मागन्धी का बौद्ध–धर्म में प्रवर्तन, देवसेना का अविवाहित रह जाना, कल्याणी का आत्मघात और ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त के साथ पुनर्विवाह। इन प्रतिक्रियाओं में कहीं अस्मिता का बोध है, तो कहीं जीवन के प्रति समझौता परक दृष्टिकोण. . कहीं निराषा है, तो कहीं विद्रोह, जो भी हो अयथार्थ कुछ भी नहीं है।

मार्कण्डेय पुराण के प्रसिद्ध कथानक के आधार पर गोविन्द वल्लभ पंत ने नाटक '' वरमाल '' का प्रणयन किया, जिसमें नायिका वैषालिनी का अंतर्द्वन्द्व उल्लेखनीय है। नारी के लिए विषुद्ध–प्रेम जितना सहज है, अहं उतना ही कृत्रिम। इन दोनों में सामंजस्य स्थापित करने के असफल प्रयत्न का परिणाम ही वैषालिनी का आंतरिक संघर्ष है।

मस्तिष्क की अहंवादी प्रवृत्ति के प्रभाव के कारण वैषालिनी, राजकुमार अवीक्षित के प्रेम को तिरस्कृत करती है लेकिन अवीक्षित जब वैषालिनी का अपहरण करता है, तब निहत्थे राजकुमार पर वैषालिनी के पिता और सैनिक टूट पड़ते हैं। वैषालिनी का नारी हृदय प्रेमाभिभूत हो राजकुमार को शस्त्र देने के लिए उसे विवष करता है। अवीक्षित द्वारा राक्षस के पंजे से छुड़वाए जाने के बाद वैषालिनी का अहं चूर हो जाता है और वह द्वन्द्वयुक्त हो जाती है।

चन्द्रगुप्त विधालंकार के नाटक '' रेवा '' में लेखक ने प्रेम और कर्तव्य के संघर्ष को ही नायिका के अंतर्द्वन्द्व के रूप में प्रस्तुत किया है। नाटक की नायिका रेवा है, जिसे उसके गुरूदेव आदेष देते हैं कि वह उसके लिए आने वाले किसी विदेषी राजकुमार के साथ ही विवाह करे। राजकुमारी रेवा आषाद्वीप की आसिका होने के कारण उसके साथ विवाह करने के लिए कई राजकुमार आते हैं और रेवा द्वारा ठुकराए जाते हैं। अन्ततः जब काम्भोज देष का युवराज यषोवर्मा आषाद्वीप में पदार्पण करता है, तो रेवा का हृदय सप्रेम उसे समर्पित हो जाता है।

चन्द्रराज भंडारी '' विषारद '' द्वारा सन् 1922 ई. में प्रणीत नाटक '' सिद्धार्थ कुमार या महात्मा बुद्ध '' में प्रमुख नारी पात्र यषोधरा है, जिसे एक आदर्ष नारी के रूप में प्रस्तुत करने हेतु नाटककार ने सिद्धार्थ को उसके महाभिनिष्क्रमण पर पत्नि यषोधरा द्वारा सहर्ष विदायी दिलवाया है। लेकिन पंद्रह वर्षो के उपरांत जब सिद्धार्थ बुद्ध बनकर लौटता है तब यषोधरा के अतीत का त्याग का वह आदर्ष अंतर्द्वन्द्व के तूफान में डग–मगा जाता है। उसका हृदय पति के पास उसे जाने के लिए उत्साहित करता है, परन्तु क्षत्रियवंषजा यषोधरा का शाही मस्तिष्क उसे टोकता है। इसी द्वन्द्व में यषोधरा कहती है '' मैं क्यों जाऊँ ? मेरे स्वामी आये हैं तो वे अवष्य यहाँ मुझसे मिलने को आयेंगे। यदि मेरे प्रेम में कुछ भी आकर्षण है, यदि उसमें कुछ भी सत्यता है, तो वे अवष्य यहाँ खिचे हुए चले आयेंगे। चाहे वे बुद्ध हों चाहे संसार के पूजनीय हों, पर यषोधरा के तो वही सिद्धार्थ हैं। (दृढ़ता से) मैं न जाऊँगी।''[1] इस बिन्दु पर मस्तिष्क का तात्कालिक विजय होता है और यषोधरा पति के दर्षनार्थ नहीं जाती है, लेकिन भगवान बुद्ध के द्वार पर आते ही

यषोधरा के हृदय में जो भाव–धारा उमड़ती है, उसमें उसका द्वन्द्व बह जाता है और वह सहर्ष तथागत के चरणों में पुत्र राहुल को समर्पित कर देती है।

मिश्रजी का एक अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक '' गरूडध्वज '' है, जिसकी कथावस्तु की पृष्ठभूमि ईसा पूर्व की आरंभिक शताब्दियों से जुड़ी हुई है। इस नाटक की प्रमुख नारी पात्र वासंती है, जो काषी नरेष की पुत्री है। काषी नरेष अभिधर्म के अनुयायी होने के कारण वासंती का विवाह भी किसी बौद्ध राजकुमार से करना चाहते हैं, परन्तु ऐसे वर के न मिलने पर वे वासंती का वाग्दान यवन राजकुमार शाकल से कर देते हैं। सरल–हृदया वासंती में तर्क और बौद्धिकता की भी कोई कमी नहीं है। वह जातिगत भेद–भावनाओं को मानवसृष्टि ही मानती है। युवराज शाकल की हत्या हो जाने पर वासंती का नारी सहज प्रेमी–हृदय व्यथित हो उठता है। आचार्य जब उसे किसी राजकुमार का वरण करने की सलाह देते हैं, तब वह द्वन्द्व–ग्रस्त होती है। उसका हृदय चाहता है कि उसका पति चाहे कोई भी क्यों न हो, परन्तु उसकी (वासंती) स्वीकृति उसके संपूर्ण अतीत के साथ होनी चाहिए और उसका तर्क जवाब दे देता है कि ऐसा नितांत असंभव है। जब वासंती को मलयवती और विक्रमषील के पारस्परिक प्रेम का बोध होता है, तब वासंती में नारी सहज यौन कुंठा उन्मीलित होती है। वह अनुभव करती है कि उसमें विक्रमषील के प्रति दैहिक धरातल पर अतृप्त प्रेम–भावना है। अपने आंतरिक द्वन्द्व से मुक्ति हेतु वह तर्क का सहारा लेना चाहती है। वह कहती है'' उसे दिन तुम्हीं ने कहा था, एक वृक्ष के सहारे कई लतायें खड़ी रह सकती हैं, और जिस बन में एक ही पेड़ हो और लतायें कई हों वहाँ क्या होगा।''

इस बिन्दु पर पहुँचकर वासंती अपने पति द्वारा अपने अतीत की स्वीकृति की बात भुला देती है लेकिन नाटककार ने कालिदास के साथ वासंती का विवाह कराकर उसकी आंतरिक समस्या का हल दूसरे ही ढंग से प्रस्तुत किया है।

मिश्र जी के नाटकों की वस्तु चाहे सामाजिक हो या ऐतिहासिक, उन्होंने समय की माँग और प्रभाव के अनुरूप ही अपने नारी चरित्रों के व्यक्तित्वों को विकसित किया है।'' सन्यासी '' नाटक की भूमिका में इसी बात उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि उन्होंने नाटक के पात्रों को इस तरह स्वच्छंद छोड़ दिया है कि अपने उत्थान और पतन के लिए वे पात्र स्वंय बाध्य है। मिश्र जी के नारी पात्रों में भाउकता और बौद्धिकता के समन्वय और संघर्ष अत्यंत सहज रूप में चित्रित हुए हैं। इस संदर्भ में डॉ. ब.ल. कोतमिरे का कथन उल्लेखनीय है '' इनके अधिकांष नाटक चिरन्तन नारीत्व की समस्या से संबंधित हैं। इनके समस्या नाटकों के नारी मात्र वर्तमान षिक्षा प्रणाली से प्रभावित हैं और पाष्चात्य जीवन पद्धति का अनुकरण करने की प्रवृत्ति उनमें दिखाई पड़ती है इसलिये प्रेम, विवाह, पाप–पुण्य आदि के बारे में उनका सोचने का दृष्टिकोण भारतीय होकर भी पाष्चात्य पद्धति का अनुकरण करता हुआ दिखाई पड़ता है।''

अपराजिता अपने माता–पिता के निर्णय का विरोध न करने की स्थिति में अपने ही विधुर–जीजा प्राणनाथ के साथ विवाह–सूत्र में बंधने के लिए विवष होती है इसके लिए उसे अपने प्रेमी दिलीप को भी त्यागना पड़ता है।

परन्तु वह अपने वैवाहिक जीवन में सुख का अनुभव प्राप्त नहीं कर पाती है। विवाह के आठ वर्षों के उपरांत भी उनके हृदय में दिलीप के मादक प्रेम की लालसा यथावत है। पति के प्रति बुझा–बुझा व्यवहार और बच्चों के प्रति उसकी खीज उसकी आंतरिक छट–पटाहट के प्रतीक है। दिलीप से उसके कथन में उसकी यह छट–पटाहट यूँ अभिव्यंजित होती है। '' मुझे कभी–कभी ऐसा लगता है जैसे यह अखनूर मेरा काला पानी है और मैं यहाँ आजीवन बंदी बना दी गयी हूँ।''[1] अपराजिता की अंतष्चेतना में अपने वैवाहिक जीवन को कैद मानने की भावना गुँफित है, जो किसी भी स्थिति में मुक्ति की अपेक्षा नहीं कर पाती है। इसी भावना को अभिव्यक्त करते हुए उसका दिलीप से कहना है '' किंगकांग . . (मुस्काती है) तुम्हें याद है न हम एक बार किंगकांग की फिल्म देखने गए थे। मैं उस लड़की को नहीं भूल सकी जिसे किंगकांग उठा ले गया था। (दीर्घ निःष्वास लेती है) वह मुक्त हो गई थी। पर मैं ''[2] अपराजिता का द्वन्द्व जीवन से समझौता कर लेने की बिन्दु पर समाप्त होता है। इसी समझौता को वह अपने दांपत्य जीवन की चरम परिणति मानते हुए सांकेतिकता भरे शब्दों में कहती है '' किंगकांग से कब का समझौता कर लिया है।''[3] अपराजिता की यह समझौता वादिता की पृष्ठभूमि में उसकी आर्थिक परवषता और माता–पिता के निर्णय के प्रति पर झुका देने वाली भारतीय कन्या की परम्परागत विवषता प्रतिकृत है।

नाटक साहित्य में सेठ गोविन्द दास का एक अप्रतिम स्थान है, जिन्होंने पुराण, इतिहास, समाज, राजनीति आदि क्षेत्रों से अपने नाटकों का वस्तु–चयन किया है। महाभारत की एक प्रसिद्ध घटना के आधार पर उन्होंने नाटक '' कर्ण '' का प्रणयन किया, जिसकी प्रमुख नारी पात्री कुंती के चरित्र में घटनाओं के अनुरूप आंतरिक द्वन्द्व की योजना अत्यंत प्रभावपूर्ण बन पड़ी है।

कुंती जब अर्जुन और कर्ण की प्रतिद्वन्द्विता को देखती है, तो उसका मातृ हृदय विह्वल हो जाता है और वह कर्ण को उसका जन्म–वृत्तांत बता देना चाहती है, परन्तु उसका तर्क उसे समाज का भय दिखलाता है। सामायिक अंधरूढ़ियों का विरोध करना चाहती हुई भी कुंती द्वन्द्व ग्रस्त हो मौन रह जाती है। उसका कथन है '' अभी भी सच्चा रहस्य प्रगट करूँ पर समाज . . . समाज क्या कहेगा ?''

स्वातंत्र्योत्तर काल–खण्ड में प्रणीत उपन्यास, कहानी और नाटक साहित्य से संबद्ध उक्त प्रतिनिधि रचनाओं के वष्लेषण से ज्ञात होता है कि उन रचनाओं में वर्णित नारी–पात्रों के मन–मस्तिष्क के द्वन्द्व के कारणों में सामाजिक पक्ष का प्रभाव ही अधिक रहा है। सामाजिक विषयों पर आधारित रचनाओं में प्रेम जहाँ विवाह और दहेज संबंधी समस्याओं में उलझकर जहाँ द्वन्द्व का कारण बना वही प्रेम के एक–आध रचनाओं में दांपत्येत्तर संबंधों में भी पड़कर कहीं–कहीं वासनात्मक रूप धारण कर गया। ऐतिहासिक रचनाओं में वर्णित अंतर–द्वन्द्व के मूल में कहीं वैयक्तिक प्रतिष्ठा और अस्मिता का प्रष्न है, तो कहीं राष्ट्रीय हित से संबद्ध अंष।

प्रसाद, लक्ष्मीनाराण मिश्र, जैनेन्द्र, अज्ञेय जैसे साहित्यकारों ने तो अंतर्द्वन्द्व को अपनी रचनाओं का आधार तक बना दिया। आधुनिक सभ्यता के विस्तृत समाजीकरण की अनुपस्थिति में तत्कालीन साहित्यक विधाओं में अंतर–द्वन्द्व के वे रूप, प्रतिक्रियायें और परिणाम लक्षित नहीं होते हैं, जो संप्रति कालीन साहित्य में दीख पड़ते हैं। आगामी अध्यायों में विवेच्य विषय के अनुरूप विविध प्रवृत्तियों से संबंध प्रतिनिधि उपन्यासों में वर्णित नारी के मन–मस्तिष्क के द्वन्द्व का गहन विष्लेषण प्रस्तुत किया

गया है, साथ ही साथ लेखिकाओं के अंतर्द्वन्द्व चित्रण संबंधी विलक्षणताओं को भी अलग अध्याय में रेखांकित करने का उपक्रम किया गया है।

सहायक ग्रन्थ सूची

1. उग्रतारा – नागार्जुन – यात्री प्रकाशन, दिल्ली – सं. 1994

2. मृगनयनी – वृन्दावन लाल वर्मा – प्रभात प्रकाशन, दिल्ली – सं. 1995

3. व्यतीत – जैनेन्द्र कुमार – पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली – सं. 1995

4. अचला एक मनः स्थिति – मुद्राराक्षस – लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली – सं. 1995

5. रतिनाथ की चाची – वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली – सं. 1996

6. मुक्तिपथ – इलाचन्द्र जोशी – लोकभारती, इलाहाबाद – सं. 1996

7. धर्मपुत्र – आचार्य चतुरसेन शास्त्री – राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली – सं. 1996

8. जंगल के फूल – राजेन्द्र अवस्थी – राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली – सं. 1996

9. रेखा – भगवतीचरण वर्मा –राजकमल (पैपरबैक्स) प्रा. लि. नई दिल्ली – सं.1997

10. पुनर्नवा – हजारी प्रसाद द्विवेदी – राजकमल, नयी दिल्ली – सं. 1997

11. गंगा मैय्या – भैरव प्रसाद गुप्त – लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद – सं. 1997

12. शह और मात – राजेन्द्र यादव – राजकमल (पैपरबैक्स) प्रा.लि., नई दिल्ली, – सं. 1997

13. वैशाली की नगर वधू – आचार्य चतुरसेन शास्त्री – राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली – सं. 1998

14. वैशाली की नगर वधू – आचार्य चतुरसेन शास्त्री – राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, – सं. 1998

15. वैशाली की नगर वधू – आचार्य चतुरसेन शास्त्री – राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, – दिल्ली – सं. 1998

16. बाणभट्ट की आत्मकथा – हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल (पैपरबैक्स) प्रा.लि., नयी दिल्ली – 1998

17. सुहाग के नूपुर – अमृतलाल नागर – (पैपरबैक्स) प्रा. लि., प्र.सं. – 1960, नयी दिल्ली, – 1998

18. गैला आँचल – फणीश्वरनाथ, '' रेणु '' – राजकमल (पैपरबैक्स) प्रा. लि., नयी दिल्ली – 1999

19. शतरंज के मोहरे – अमृतलाल नागर – भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली प्र.सं. 1959 – सं. 1999

20. डाक बंगला – कमलेश्वर – राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली – 1999